RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January -2019
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

तुलनात्मक शासन प्रणाली एवं धर्म

डॉ. रेणु सिंह

शिक्षिका राजनीति विज्ञान श्री रामलखन सिंह सर्वोदय उच्चतर विद्यालय, पुनाईचक, पटना

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 20 January 2019

Keywords
साम्राज्य, मंत्रिपरिषद् , राजशासन, मगध जनपद, दिव्यावदान।

ABSTRACT

कौटिल्य के अर्थशास्त्रा के विभिन्न प्रकरणों में शासन तंत्रा, मंत्रिपरिषद् एवं संस्थाओं का विशद् विश्लेषण है, साथ ही शासनतंत्रा में संस्थाओं की परंपरागत एवं नवीन विधियों के मध्य समन्वय के द्वारा राज–व्यवस्था को चित्रित करने का एक प्रयास है। विभिन्न स्रोतों एंव अर्थशास्त्रा से प्राप्त तथ्यों के आधर पर बृहत मौर्यसाम्राज्य की शासन संस्थाओं के विकास और उसमें राजा के बाद महत्वपूर्ण मंत्रिपरिषद् का उल्लेख है, जिसके द्वारा संपूर्ण शासनतंत्रा को राजा के सर्वोच्च निर्णय के निकट लाना, शासन–व्यवस्था की सपफलता को संपूर्ण तंत्रा मानता है।

भूमिका : ''कौटिल्य कालीन शासनतंत्रा, मंत्रिपरिषद् एवं संस्थाओं के अध्ययन का आधर–अर्थशास्त्रा है। यद्यपि अन्य स्रोत एवं पुरातात्विक लेख, शिलालेख से भी जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्रा के आधर पर मौर्य–युग की शासन संस्थाओं का अनुशीलन करते हुए हमें निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए –(1) कौटिल्य अर्थशास्त्रा में प्रतिपादित शासन संस्थाओं का संबंध मुख्यतया जनपदों के शासन से है। मगध –साम्राज्य के विकास से पूर्व भारत में बहुत–से स्वतंत्रा जनपदों की सता थी, जो कि अधिनस्थ रूप में मौर्य–साम्राज्य में भी कायम रहे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्रा का निर्माण पुराने आचार्यों के शास्त्रों का संग्रह व समन्वय करके किया था। अतः स्वाभाविक रूप से उसमें बहुत–से ऐसे मन्तव्यों का समावेश है जिनका संबधं जनपदों के शासन से है। अर्थशास्त्रा में जिन बहुत से अध्यक्षों व अमात्यों का विवरण दिया गया है, वे सम्भवतः जनपदों के शासन से ही संबंध रखते हैं।

(2) एक विशाल साम्राज्य का निर्माण हो जाने पर इस साम्राज्य का शासन मुख्यतया सम्राट् व उसकी मंत्रिपरिषद् द्वारा ही संचालित होता था। साम्राज्य का निर्माण क्योंकि 'बिजिगीषु' राजा द्वारा हुआ था, अतः उसका शासन भी उसी के अधेन था। वही ऐसे राज्य में 'कूटस्थानीय' होता था''[1] राजा यद उत्यानशील हो, तो राज्य उन्नति करता है। यदि वह प्रमादी हो तो राज्य अवनति के मार्ग पर अग्रसर होता है। मंत्रि–पुरोहित आदि मंत्री,अध्यक्ष आदि कर्मचारी–वर्ग राजा के सक्रिय होने पर हीं राज्य की उन्नति के लिए तत्पर होते है। सब पराधिकारी राजा द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं। यदि राजा अपने विवेक से सुयोग्य मंत्रियों व पदाध्किारियों को नियुक्त करेगा तभी उनके यत्न से राज्य का उत्कर्ष संभव होगा।[2] इस दशा में यह संभव नहीं था, कि साम्राज्य के केन्द्रीय शासन में किन्हीं ऐसी शासन–संस्थाओं का विकास हो, जिनमें जनता को भी प्रतिनिध्वि प्राप्त हो। यही कारण है कि कौटलीय अर्थशास्त्रा द्वारा साम्राज्य के केन्द्रीय शासन में कहीं सभा–समिति जैसी संस्थाओं के केन्द्रीय शासन में की सभा–समिति जैसे संस्थाओं की सता सूचित नहीं होती, यद्यपि परंपरागत ग्रामसंध और जनपद संघ (या पौर जनपद सभाएँद्ध इस काल में भी विद्यमान रहे। मंत्रि–परिषद् की सत्ता इस काल में अवश्य थी, पर उसमें कितनी मंत्री हों, उन्हें कैसे नियुक्त किया जाए और उनसे किस ढ़ंग से परामर्श लिया जाए, यह सब राजा की अपनी इच्छा पर निर्भर था।

यद्यपि संपूर्ण मौर्य साम्राज्य की राजधनी पाटलीपुत्रा थी, पर वहाँ से कम्बोज, वंग और आंधतक विस्तृत साम्राज्य का शासन सुचारू रूप से नहीं किया जा सकता था। अतः शासन की दृष्टि से मौर्यों के अधेन संपूर्ण 'विजित' को पाँच भागों में बाँटा गया था, जिनकी राजधानिया क्रमशः पाटलिपुत्रा, तोसाली, उज्जैनी, तक्षशिला और सुवर्णगिरि थी। इन राजधानियों को दृष्टि में रखकर हम यह सहज में अनुमान कर सकते है, कि विशाल मौर्य साम्राज्य पाँच चक्रों में विभक्त था। ये चक्र ;प्रोत या सूवेद्ध निम्नलिखित थे (1) उतरापथ–जिसमें कम्बोज, गांधर, काश्मीर, अपफगानिस्तान, पंजाब आदि के प्रदेश अंतर्गत थे। इसकी राजधनी तक्षशिला थी। (2) पश्चिम चक्र इसमें काठियाबाड़ गुजराज से लेकर राजपूताना, मालवा आदि के सब प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधनी उज्जैनी थी। (3) दक्षिण–पथ–विंध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश इस सक्र में था और इसकी राजधनी सुवर्णगिरि थी। (4) कलिंग–अशोक ने अपने नये जीते हुए प्रदेश का एक पृथक् चक्र बनाया था, जिसकी राजधनी तोसाली थी। (5) मध्यदेश–इसमें वर्तमान बिहार, उतरप्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे। इसकी राजधनी पाटलिपुत्रा थी। इन पाँचों चक्रों का शासन करने के लिए प्रायः राजकुल के व्यक्तियों को नियत किया जाता था, जिन्हें कुमार कहते थे। कमार अनेक महामात्यों की सहायता से अपने–अपने चक्र का शासन करते थे। अशोक और कुनाल, राजा बनने से पूर्व उज्जैनी, तक्षशिला आदि के 'कुमार' रह चुके थे।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

चक्रों के उपविभाग–इन पाँच चक्रों के अंतर्गत पिफर अनेक छोटे शासन–केन्द्र या मण्डल भी थे जिनमें कुमार के अधीन महामात्य शासन करते थें। चक्रों के शासन के लिए कुमार की सहायतार्थ जो महामात्य नियुक्त होते थे, उन्हें शासन संबंधी बहुत अध्किार प्राप्त थे।

जनपद और ग्राम – मौर्य साम्राज्य के मुख्य पाँच चक्र या विभाग थे, और पिफर ये चक्र अनेक मण्डलों में विभक्त थे। प्रत्येक मण्डल में बहुत से जनपद होते थे। शासन की हष्टि से जनपदों के भी विविध् विभाग होते थे, जिन्हें कौटलीय अर्थशास्त्रा में स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण और ग्राम कहा गया है।

शासक–वर्ग– शासनकार्य में सम्राट् की सहायता करने के लिए एक मंत्रिा–परिषद् होती थी। अशोक के शिलालेखों में भी उसकी परिषद् होती थी। अशोक के शिलालेखों में भी उसकी परिषद् का बार–बार उल्लेख है। केन्द्रीय सरकार की ओर से जो राज–कर्मचारी साम्राज्य में शासन के विविध् पदों पर नियुक्त थे, उन्हें पुरूष कहते थे। ये पुरूष उतम, मध्यम और हीन–तीनों दर्जों के होते थे।

स्थानीय स्वाशासन– जनपदों के शासन का संचालन करने के लिए जहाँ केन्द्रीय सरकार की तरपफ से समाहर्ता नियत थे, वहाँ जनपदों की अपनी आंतरिक स्वतंत्राता भी अक्षुण्ण रूप से कायम थी। कौटलीय अर्थशास्त्रा में बार–बार इस बात पर जोर दिया गया है कि जनपदों, नगरों व ग्रामों के ध्र्म, चरित्रा और व्यवहार को अक्षुण्ण रखा जाय। इसका अभिप्राय यह हुआ, कि इनमें अपना स्थानीय स्वशासन पुरानी परंपरा के अनुसार जारी था।

मौर्य–साम्राज्य के शासन का यही स्थूल ढाँचा है। अब हम इसका अध्कि विस्तार से वर्णन करेंगे।

विजिगीषु राजषि सम्राट्ः– विविध् जनपदों और गणराज्यों को जीतर जिस विशाल मगध्–साम्राज्य का निर्माण हुआ था, उसका केन्द्र राजा या सम्राट् था। चाणक्य के अनुसार राज्य के सात अंगों में केवल दो की मुख्यता है राजा और देश।[3]

''प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्य के सात अंग माने जाते थे–राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्रा। पुराने युग में जब छोटे–छोटे जनपद होते थे और उनमें एक हीं 'जन' का निवास होता था, तो राजा की उनमें विशेष महता नहीं होती थी। इसीलिए आचार्य भारद्वाज की दृष्टि में राजा की अपेक्षा अमाम्य की अध्कि महता थी। अन्य आचार्यों की दृष्टि में अमात्य की अपेक्षा भी जनपद, दुर्ग, कोश आदि का महत्व अध्कि था।[4] कौटिल्य के शब्दों में ''मंत्राी, पुरोहित आदि भृत्य वर्ग की और राज्य के विविध् अध्यक्षों व अमात्यों की नियुक्ति राजा ही करता है। राजपुरूषों पर, कोष व जनता पर यदि कोई विपति आ जाय, तो उसका प्रतीकार राजा द्वारा ही होता है। इनकी उन्नति भी राजा के हीं हाथ में है। यदि अमात्य ठीक न हों, तो राजा उन्हें हटाकर नये अमात्यों की नियुक्ति करता है। पूज्य लोगों की पूजा कर और दुष्ट लोगों का दमन कर राजा हीं सबका कल्याण करता है, यदि राजा सम्पन्न हो, तो उसकी समृधि से प्रजा भी सम्पन्न होती है, राजा का जो शील हो, वही शील प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी व उत्थानशील हो, तो प्रजा भी उत्थानशील होती है। यदि राजा प्रमादी हो, तो प्रजा भी वैसी हीं हो जाती है। अतः राज्य में कूटस्थानीय (केन्द्रीभूतद्ध राजा ही है]**[5]

जब साम्राज्यों में राजा का इतना अध्कि महत्व हो, तो राजा को भी एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। राजा की बुधि बहुत तीक्ष्ण होनी चाहिए। स्मरण शक्ति, बुधि और बल की उसमें अतिशयता होनी चाहिए। उसे अत्यंत उग्र, अपने उफपर काबू रखने वाला, सब शिल्पों में निपुण, सब दोषों से रहित और दूरदर्शी होना चाहिए। काम, क्रोध लोभ, मोह, चपलता आदि पर उसका पूरा काबू होना चाहिए।

चाणक्य इस बात को भली–भाँति समझता था, कि इस प्रकार का आदर्श पुरूष सुगमता से नहीं मिल सकता। पर शिक्षा और विनय से ये गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। यदि एक कुलीन और होनहार व्यक्ति को बचपन से हीं उचित शिक्षा दी जाय, तो उसे एक आदर्श राजा बनने के लिए तैयार किया जा सकता है। अतः कौटलीय अर्थशास्त्रा के बिजिगीषु राजा का पूर्ण पुरूष होकर राजषि का जीवन व्यतीत करते हुए अपना कार्य करना चाहिए।

मगध ने जिस प्रकार के साम्राज्य का विकास किया था, उसकी सपफलता के लिए अवश्य ही राजा को अनुपम शक्तिशाली और गुण सम्पन्न होना चाहिए था। निः सन्देह, मगध –साम्राज्य के शासन में राजा हीं 'कूटस्थानीय' होता था। यही कारण है, कि यदि कोई राजा निर्बल या अयोग्य हुआ, तो उसके विरू(विप्रोह उठ खड़े होते थे, और साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगती थी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर आचार्य चाणक्य ने राजा के वैयक्तिक गुणों पर अत्यध्कि बल दिया है।

मंत्रिापरिषद्ः– ''आचार्य चाणक्य के अनुसार राजकृति तीन प्रकार की होती है– प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, जो अपने सामने हो, वह प्रत्यक्ष है। जो दूसरे बताएँ, वह परोक्ष है। किये हुए कर्म से बिना किये हुए कर्म से बिना किये का अंदाजा करना अनुमेय कहलाता है, सब काम एक साथ नहीं होते। राजकर्म बहुत से होते हैं, और बहुत–से स्थानों पर होते हैं। अतः एक राजा सारे राजकर्म अपने आप नहीं कर सकता। इसलिए उसे अमात्यों की नियुक्ति करने की आवश्यकता होती है। इसीलिए यह भी आवश्यक है कि मंत्राी नियत किये जाएँ, जो परोक्ष और अनुमेय राजकर्मो के संबंध में राजा को परामर्श देते रहे।[6] राज्यकार्य सहायता के बिना सिध नहीं हो सकता। एक पहिये से राज्य की गाड़ी नहीं चल सकती, इसलिए राजा सचिवों की नियुक्ति करे, और उनकी सम्मति को सुने।[7]

मंत्रिापरिषद् का कार्य सर्वथा गुप्त हो, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था। चाणक्य के अनुसार इसके लिए

ऐसा स्थान चुनना चाहिए, जहाँ पक्षियों तक की भी दृष्टि न पड़े जहाँ से कोई भी बात बाहर का आदमी न सुन सके। सुनते हैं, कि शुक, सारिका, कुते आदि जीव–जन्तुओं तक से मंत्रा का भेद खुल गया। इसलिए मंत्रारक्षा का पूरा प्रबधं किये बिना इस कार्य में कभी प्रवृत न हो। यदि कोई मंत्रा का भेद खोले तो उसे जान से मार दिया जाय।[8]

''बड़ी मंत्रिापरिषद् के अतिरिक्त एक छोटी उपसमिति भी होती थी, जिसमें तीन या चार खास मंत्रीा रहते थे। इसे 'मंत्रिाणः' कहा जाता था। जरूरी मामलों पर इसकी सलाह ली जाती थी। राजा प्रायः अपने 'मंत्रिाणः' और 'मंत्रिापरिषद् के परामर्श से ही राजकार्य का संचालन करता था। वह भली–भाँति समझता था, कि मंत्रासि(अकेले कभी नहीं हो सकती। जो बात मालूम नहीं है उसे मालूम करना, जो मालूम है उसका निश्चय करना। जिस बात में दुविध है, उसके संशय को नष्ट करना और जो बात केवल आंशिक रूप से मालूम है, उसे पूर्णाश में जानना, यह सब कुछ मंत्रिापरिषद् के मंत्रा द्वारा ही हो सकता है। अतः जो लोग बुधि वृध हो, उन्हें सचिव या मंत्रीा बनाकर उनसे सलाह लेनी चाहिए। मंत्रिापरिषद् में जो बात भूयिष्ठ ;अध्कि संख्या केद्ध कहे, उसी के अनुसार कार्य करना उचित है, पर यदि राजा को भूयिष्ठ की बात 'कार्यसिद्विक' प्रतीत न हो, तो उसे उचित है कि वह उसी सलाह को माने, जो उसकी दृष्टि में कार्यसिद्विकर हो।[9]

इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि मौर्यकाल में राज्यकार्य में परामर्श देने के लिए मंत्रिापरिषद् की सत्ता थी। अशोक के शिलालेखों में जिसे 'परिषा' कहा गया है, वही कौटलीय अर्थशास्त्रा की मंत्रिापरिषद् है। पर इस परिषद् की मंत्रियों की नियुक्ति न तो निर्वाचन से होती थी और न इसके कोई कुलक्रमानुगत सदस्य हीं होते थे। परिषद् के मंत्रियों की नियुक्ति राजा अपनी स्वेच्छा से करता था। जिन अमात्यों एवं अन्य व्यक्तियों को वह 'सर्वोपधशुद्व' पाता था उनमें से कुछ को आवश्यकतानुसार मंत्रिापरिषद् में नियुक्त कर लेता था। मगध साम्राज्य की मंत्रिापरिषद् यद्यपि राजा की अपनी कृति थी, तथापि वह प्राचीन परिपाटी के अनुसार राजा को सुपथ पर लाने के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करती थी। राज्य के शासन में मंत्री व अमात्य राजा की स्वेच्छाचारिता को किस प्रकार नियंत्रिात कर सकते थे, इस संबंध में दित्यावदान को एक कथा उल्लेखनीय है।

''पहले राजा अशोक सुवर्ण'पात्रों में रखकर भिक्षुओं को भोजन भेजा करता था। पर ऐसा करने से उसे मना कर दिया गया। पिफर उसने चाँदी के पात्रों में भोजन भेजना चाहा पर इसे भी रोक दिया गया। पिफर उसने लोहे के पात्रों में भोजन भेजना चाहा पर इसकी अनुमति भी उसे नहीं दी गई । अंत में मिट्टी के पात्रों में उसने भोजन भेजना चाहा, पर ऐसा करने से भी उसे रोक दिया गया। अंत में उसके पास केवल आध आँवला बच गया जो कि उस समय उसके हाथ में था। संविग्न होकर अशोक ने अमात्यों और पौरों को बुलाकर पूछा– 'इस समय पृथ्वी ;देश या राज्यद्ध का स्वामी कौन है? अमात्य ने उठकर और यथोचित रीति से राजा का अभिवादन करके कहा – 'देव ही राज्य के स्वामी हैं।' इस पर आँसुओं से अपने मुख को गीला करते हुए अशोक ने कहा 'तुम केवल दक्षिण्य से भूठ क्यों बोलते हो? मैं तो राज्य से भ्रष्ट हो गया हूँ। मेरे पास तो केवल यह आध आँवला ही बचा है, जिसपर मेरा स्वामित्व है। ऐसे को ध्क्किार।' इसके बाद अशोक ने उस आध्े आँवले को कुर्कुटाराम भेजते हुए कहलवाया –'त्यागशूर मार्यक×जर जो राजा अशोक था, वह सारे जम्बूद्वीप का स्वामी होकर भी अब केवल इस आध्े आँवले का ही स्वामी रह गया है। भृत्यों ने उसके अध्किार को छीन लिया है। अब वह केवल इस आध्े आँवले को ही दान में दे सकता है।[10]

मंत्रिापरिषद् के अमात्य राजा की स्वेच्छाचारिता पर पर्याप्त नियंत्राण रख सकते थे, यह बात दित्यावदान की इस कथा से भलीभाँति सूचित होती है। राजा लोग देश के प्राचीन परंपरागत राजध्र्म का पालन करते थे और अपने 'व्यवहार' का निर्धरण उसी के अनुसार करते थे। यह ध्र्म और व्यवहार सनातन थे राजा की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं थे। इन्हीं सबका परिणाम था, कि पाटलिपुत्रा में विजिगीषु राजर्षि राजाओं के रहते हुए भी जनता अपना शासन अपने आप किया करती थी। इन सब बातों पर कुछ अध्कि विस्तार से प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

जनपदों का शासन– मगध के साम्राज्यवाद ने धीरे–धीरे भारत के सभी पुराने जनपदों को अपने अधीन कर लिया था। पर इनजनदों की अपनी सभाएँ होती थीं, जिन्हें पौर जनपद कहते थे। जनपद की राजधनी या पुर की सभा को 'पौर' और शेष प्रदेश की सीमा को 'जनपद' कहा जाता था। प्रत्येक जनपद के अपने ध्र्म, व्यवहार और चरित्रा भी होते थे। मगध् के सम्राटों ने इन विविध जनपदों को जीतकर इनकी आंतरिक स्वतंत्राता को कायम रखा।

जनपदों का शासन करने के लिए सम्राट् की ओर से समाहर्ता नामक राज–पुरूष की नियुक्ति की जाती थी। पर वह जनपद के आंतरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था। स्वशासन की दृष्टि से सब जनपदों की स्थिति एक समान नहीं थी। शैशुनाग, नन्द आदि मगध् राजा भी अपने साम्राज्य का बहुत कुछ विस्तार करने में सपफल हुए थे।

नगरों का शासन– मौर्यकाल में नगरों के स्थानीय स्वशासन की क्या दशा थी, इसका सबसे अच्छा परिचय मेगास्थनीज की यात्राा विवरण से मिलता है। मेगास्थनीज ने पाटलिपुत्रा के नगर–शासन का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार पाटलिपुत्रा की नगर सभा छःउपसमितियों में विभक्त थी और प्रत्येक उपसमिति के पाँच–पाँच सदस्य होते थे। इन उपसमिल्यिों के कार्य निम्नलिखित थे–

पहली उपसमिति का कार्य औद्योगिक तथा शिल्प–संबंधी कार्यो का निरीक्षण करना था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शिल्पी लोगों का समाज में बड़ा आदर था। प्रत्येक

शिल्पी शब्द की सेवा में नियुक्त माना जाता था। दूसरी उपसमिति का कार्य विदेशियों का सत्कार करना था आजकल जो काम विदेशों के इतमण्डल करते है, उनमें से उनेक कार्य यह समिति किया करती थी। जो विदेशी पाटलिपुत्रा में आये, उन पर यह उपसमिति भी निगाह रखती थी। तीसरी उपसमिति का कार्य मर्दुमशुमारी करना था। मृत्यु और जन्म की सूची रखना इसी उपसमिति का कार्य था। कर लगाने के लिए यह सूची बड़ी उपयोगी होती थी।

चौथी उपसमिति क्रय–विक्रय के नियमों का निर्धरण करती थी। भार और माप के परिमाणों को निश्चित करना, व्यापारी लोग उनका शुधता के साथ और सही सही उपयोग करते हैं, इसका निरीक्षण करना इस उपसमिति का कार्य था। पाँचवी उपसमिति व्यापारियों पर इस बात के लिए कड़ा निरीक्षण रखती थी, कि वे लोग नई और पुरानी वस्तुओं को मिलाकर तो नहीं बेचते। नई और पुरानी चीजों को मिलाकर बेचना कानून के विरूध था। छठी उपसमिति का कार्य क्रय–विक्रय पर टैक्स वसूल करना होता था।

इस प्रकार छः उपसमितियों के पृथक–पृथक् कार्यो का उल्लेख कर मेगास्थनीज ने लिखा है कि ''ये कार्य है, जो उपसमितियाँ पृथक् रूप से करती है। पर पृथक् रूप में जहाँ उपसमितियों को अपने–अपने विशेष कार्यो का ख्याल करना होता है, वहाँ वे सामूहिक रूप से सर्वसामान्य या सर्वध्साधरण हित के कार्यों पर भी ध्यान देती है, यथा सार्वजनिक इमारतों को सुरक्षित रखना, उनकी मरम्मत का प्रबंध करना, कीमतों को नियंत्रित करना और, बाजार, बन्दरगाह और मंदिरों पर ध्यान देना।''[11] संभवतः मेगास्थनीज द्वारा वर्णित नगर–सभा नागरक के कर्मचारियों से स्वतंत्रा होकर ही अपने कार्यो को संपादित किया करती थी।

ग्रामों का शासन– जनपदों में बहुत–से ग्राम सम्मिलित होते थे और प्रत्येक ग्राम शासन की दृष्टि से अपनी पृथक् व स्वतंत्रा सत्ता रखता था। कौटलीय अर्थशास्त्रा के अध्ययन में हमें इन ग्राम–संस्थाओं के संबंध में बहुत–सी बातें ज्ञात होती हैं। प्रत्येक ग्राम का शासक पृथक्–पृथक् होता था, जिसे ग्रामिक कहते थे।

व्यवसायियों की श्रेणियाँ– मौर्यकाल के व्यवसायी और शिल्पी श्रेणियों में संगठित थे।

कौटलीय अर्थशास्त्रा के अध्ययन से मौर्य–साम्राज्य के केन्द्रीय संगठन के संबंध में भलीभाँति परिचय मिलता है। इस काल में शासन के विविध विभाग 'तीर्थ' कहलाते थे। इनकी संख्या अठारह होती थी। इनकी संक्षेप से उल्लेख करना उपयोगी है।

1. मंत्री और पुरोहित– कौटलीय अर्थशास्त्रा में इन दोनों पदों का उल्लेख प्रायः साथ–साथ आया है। प्रजा की सम्मति जानने के लिए गुप्तचरों को नियत करता था। विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति और परराष्ट्र नीति का संचालन करता था।[12]

2. समाहर्ता– विविध जनपदों के शासन के लिए नियुक्त राजपुरूषों को जहाँ समाहर्ता कहते थे, वहाँ सब जनपदों के शासन का संचालन करनेवाला विभाग (तीर्थ) भी 'समाहर्ता' नामक अमात्य के अधीन था।[13] समाहर्त्ता के अधीन अनेक अध्यक्ष होते थे, जो निम्नलिखित थे– (क) कुल्काध्यक्ष (ख) पौतवाच्यक्ष (ग) मानाध्यक्ष (ध) सूत्राध्यक्ष (ड़) सीताध्यक्ष[14] कृषि विभाग के भध्यक्ष को सीताच्यक्ष कहते थे। वह न केवल देश में कृषि की उन्नति पर ही ध्यान देता था, अपितु राजकीय भूमि पर दास, मनजूर आदि से खेती भी करवाता था। (च) सुराध्यक्ष (छ) सूनाध्यक्ष (ज) गणिकाध्यक्ष (झ) मुद्राध्यक्ष (स) विवीताध्याक्ष (ट) नावध्यक्ष (ठ) गोडध्यक्ष (ड+) अथ्वाध्यक्ष (ढ़) हस्तध्यक्ष (ण) कुप्याध्यक्ष (त) पण्याध्यक्ष (थ) लक्षणाध्यक्ष (द) आकराध्यक्ष (ध) देवताध्यक्ष[15] विविध देवताओं एवं मंदिरों का प्रबंध इसके अधीन रहता था। (न) सौवर्णिक[16] टकसाल के अध्यक्ष को सौवर्णिक कहते थे।

3. सन्निधता–राजकीय कोष का विभाग सन्निधता के हाथ में होता था। राजकीय आय एवं व्यय का हिसाब रखना और उसके संबधं में नीति का निर्धरण करना सन्निधता का ही कार्य था।

4. सेनापति– यह युधविभाग का महामात्य होता था।

5. युवराज – राजा की मृत्यु के बाद जहाँ युवराज राजगद्दी का उतराध्किारी होता था, वहाँ राजा के जीवनकाल में भी वह शासन में हाथ बँटाता था।

6. प्रदेष्टा – मौर्यकाल में न्यायालय दो प्रकार के होते थे, धर्मस्थीय और कंटकशोध्न, करकशाधेन न्यायालयों के न्यायाधीश को प्रदेष्टा कहते थे।

7. नायक– सेना के मुठय संचालक को नायक कहते थे।

8. व्यावहारिक – ध्र्मस्थीय न्यायालय के प्रधन न्यायाधीश को व्यवहारिक कहते थे। इसी को 'ध्र्मस्थ' भी कहते थे।[17]

9. कर्मान्तिक – मौर्यकाल में अनेक कारखानों का संचालन होता था।

10. मंत्रि–परिषद् मध्यक्ष – राजा को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् होती थी।

11. दण्डपाल – दण्डपाल भी सेना के साथ ही संबंध रखता था।

12. अन्तपाल – सीमा की रक्षा के लिए बहुत से दुर्ग बनाये जाते थे। जो अन्तपाल के ही हाथ में थी।

13. दुर्गपाल– साम्राज्य के अन्तर्वर्गो चुर्ग दुर्गापाल के अधिकार में रहते थे।

14. नागरक– जैसे जनपदों का शासन समाहर्ता के अधीन था। वैसे ही पुरों या नगरों के शासन का सर्वोत्य अधिकारि नागरिक होता था।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

15. प्रशास्ता – आज्ञाओं को लिपिबधकरने के लिए जो विभाग था, उसके प्रधन

अधिकारी को प्रशास्ता कहते थे।

16. दौवारिक – यह राजप्रसाद का प्रधन पदाध्किारी होता था।

17. आन्तवाँशिक – राजा की निजी अंगरक्षक सेना के अध्यक्ष को आन्तवैशिक कहते थे।

18. आटविक – मगध साम्राज्य की सेना में 'आटविक –बल' का बड़ा महत्व था।

न्याय–व्यवस्थाः– विशाल मगध –साम्राज्य में न्याय के लिए अनेक विध न्यायालय होते थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्राम–संस्था ;ग्रामसंघद्ध का होता था, जिसमें ग्राम के निवासी अपने मामलों का स्वयं निपटारा करते थे। इसके उफपर संग्रहण के, पिफर द्रोणमुख के और पिफर जनपदसन्धि के न्यायालय होते थे।[18] इनके उफपर पाटलिपुत्रा में विद्यमान धर्मस्थीय और कंटकशोध्न न्यायालय थे।

कानून के विविध अंग– न्यायालयों में किस कानून के अनुसार न्याय किया जाता था, उस संबधं में भी कौटलीय अर्थशास्त्रा से परिचय प्राप्त होता है। इस कानून के चार अंग होते थे धर्म, व्यवहार, चरित्रा और राजशासन।

निष्कर्ष

कौटिल्य के अर्थशास्त्रा में अनेक विचारों को समाहित किया गया है। यह ग्रंथ एक ओर तो राज्शास्त्रा संबंधी सिधांतों का उल्लेख करता है तो दूसरी ओर राज–व्यवस्था अथवा प्रशासन संबंधी व्यावहारिक निर्देश देता है। कौटिल्य राजा को परामर्श देता है कि उसे ऐसे सिधांतों एवं तथ्यों को ध्यान में रखकर शासन करना चाहिए जिससे वह स्वयं भी सुरक्षित एवं लोकप्रिय रहे तथा उसकी प्रजा भी सुख–समृधि का भोग, धर्म व न्यायपूर्ण दंग से शांतिपूर्ण वातावरण में करे। कौटिल्य ने राजा को इस बात का निर्देश दिया है कि जब राजा सक्रिय रूप से कार्य करेगा तभी शासनतंत्रा में मंत्राी, अध्यक्ष आदि कर्मचारी–वर्ग राज्य की उन्नति के लिए तत्पर होंगे। कौटिल्य राजा की उन्नति के लिए तत्पर होंगे। कौटिल्य राजा को अपनी मंत्राण को गोपनीय रखने का निर्देश दिया है। आज इस प्रकार को गोपनीयता लोकतांत्रिक सरकारों के प्रशासनिक मामलों में बरती जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब अर्थशास्त्रा उतम प्रशासन अथवा राज्य के अर्न्तसंबंधें की विवेचना करता है तो हम आधुनिक काल में भी उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

संदर्भ–सूची

1. 'तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति।' कौ. अर्थ. 8/1
2. ''स्वामिन्यायत्ता प्रधनसि(ि। मन्त्रिाष्वायत्ता यत्नसि(ि। उभयायत्ता प्रधनायत्ता सि(ि।'' कौ. अर्थ. 9/9।
3. ''राजा राज्यमिति प्रकृति संक्षेपः।'' कौ. अर्थ. 8/2।
4. कौ. अर्थ. 8/1 ।
5. कौ. अर्थ. 8/1 ।
6. कौ. अर्थ. 1/5 ।
7. ''सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
   कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।।'' कौ. अर्थ. 1/4 ।
8. कौ. अर्थ. 1/11 ।
9. कौ. अर्थ. 111 ।
10. दिव्यावदान, पृ.– 439–432
11. डबब्तपदकसम रू तिंहउए गगगप्टण्
12. कौ. अर्थ. 1/14 ।
13. कौ. अर्थ. 2/1 ।
14. कौ. अर्थ. 2/24 ।
15. कौ. अर्थ. 2/6 ।
16. कौ. अर्थ. 2/14 ।
17. कौ. अर्थ. 3/1 ।
18. ''र्धस्यास्त्रायस्त्रायो वा(मात्याः जनपदसन्धि–संग्रहण द्रोणमुख स्थानीयेपु व्यावहारिकान् अर्थात् कुर्युः ।'' कौ. अर्थ. 3/1 ।

RRIJM 2015, All Rights Reserved